10

बच्चों को कहानियाँ क्यों सुनाएँ?*

संजीव ठाकुर

कहानियाँ सुन-पढ़कर बच्चे जीवन के कई मूल्यों को अनायास सीखते चलते हैं। 'सदा सच बोलना चाहिए', 'ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है', 'बड़ों का आदर करना चाहिए', 'दूसरों की मदद करनी चाहिए' आदि मूल्य रटाकर हम बच्चों को सही रास्ते पर नहीं ला सकते लेकिन जब कोई बच्चा यही बात किसी कहानी में सुनता है तो उसके मन में यह भाव खुद पैदा हो जाता है। इस प्रकार कहानी बड़ी ही सहजता के साथ बच्चों में मूल्यों का विकास करती है। बच्चों के लिए कहानी अनेक प्रकार से फायदेमंद है। प्रस्तुत लेख कहानी के महत्त्व को उजागर कर रहा है।

एक समय ऐसा था, जब सभी व्यवसायिक पत्र-पत्रिकाओं में बच्चों के लिए नियमित पृष्ठ हुआ करते थे और उनमें कविताएँ, कहानियाँ नियमित रूप से छपा करती थीं। लेकिन जब बाज़ार के राक्षसी कदम पत्र-पत्रिकाओं की ओर बढ़ने लगे, तब उन कदमों ने सबसे पहले साहित्य के पन्नों को रौंदा और उसके बाद बच्चों के पन्नों को। बाज़ार की कदमताल के कुछ वर्षों बाद समीक्षा के रूप में साहित्य की थोडी-बहुत वापसी हुई थी लेकिन बच्चों के पृष्ठ न जाने किस गुफ़ा में कैद कर दिए गए? कुछ अखबारों में बच्चों के पेज शुरू भी हुए तो उनका हाल यह रहा कि विज्ञापनों से बचे-खुचे किसी कोने में कोई बाल कविता लग गई या हँसी कि फुलझड़ियाँ छोड़ दी गईं। कुछ पारंपरिक अखबारों ने बच्चों के लिए कोना जारी रखा भी तो वहाँ दृष्टिविहीन कथा, कविताओं की भरमार दिखाई पड़ती रही। कुछ मंझोले अखबारों ने बच्चों के लिए धूमधाम से पृष्ठ भी निकाले तो वहाँ कहानियों के लिए कोई जगह नहीं थीं। वहाँ था– रास्ता ढूँढ़ो, पहेलियाँ बूझो, गलतियाँ खोजो, वर्ग-पहेली, पर्यावरण, क्विज, कंप्यूटर, खाना-पीना, सुडोकू, निंटेंडो, एस.एम.एस.! बच्चों के मनोरंजन करने और उन्हें सिखाने के अथाह सामान! नहीं तो बस कविता-कहानी। क्योंकि आधुनिक 'बाल-गुरुओं' को लगता है कि कविताएँ एवं कहानियाँ महज़ अखबारों के पृष्ठ घेरने का काम करती हैं, बच्चों को तमाम तरह के ज्ञान से वंचित करने वाली होती हैं।

दरअसल ऐसे संपादकों, उप-संपादकों को इस बात का पता ही नहीं होता कि कविताओं और कहानियों की बाल-शिक्षण में क्या भूमिका

* पत्रिका '*आजकल*' (नवंबर 2009) से साभार

होती हैं? क्यों वे यह भी नहीं जानते कि सीधे-सीधे उपदेश देने की बजाय बच्चों को कहानियों के ज़रिए कुछ सिखाना ज़्यादा आसान होता है? क्या बच्चों को पृष्ठ देखने वाले उप-संपादकों को बच्चों के बारे में कोई जानकारी होती है? क्या उन्होंने बाल-शिक्षण से जुड़े टॉलस्टाय, वसीली सुखोम्लीन्स्की, ए.एस.नील, जॉन होल्ट, महात्मा गांधी, गिजुभाई, रवींद्रनाथ आदि के विचार पढ़ रखे हैं? क्या उन्हें इस बात का अनुभव है कि इक्कीसवीं सदी की गतिमय ज़िंदगी में भी बच्चों को कहानियाँ सुनना-पढ़ना कितना अच्छा लगता है? राजा, रानी, परी, राक्षस, बौने, पशु-पक्षी आदि के माध्यम से कही गई कहानियाँ किस तरह बच्चों को कल्पना की दुनिया में ले जाती हैं और उन्हें कल्पनाशील बनाती हैं, इस बात की जानकारी उन्हें है? नहीं, वे तो बच्चों को कल्पना की दुनिया से बाहर लाकर कंप्यूटर की दुनिया में लाना चाहते हैं। परियों की दुनिया से बाहर लाकर सुडोकू खेलवाना चाहते हैं, पशु-पक्षियों से बात करने की बजाय मोबाइल से जोड़ना चाहते हैं।

पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों ने क्या गिजुभाई की लिखी किताब दिवास्वप्न पढ़ रखी है? दिवास्वप्न के शिक्षक लक्ष्मीशंकर की शिक्षा से कितने लोग इत्तफ़ाक रखते हैं? पढ़ाने के बदले कक्षा में कहानियाँ सुनाने वाले लक्ष्मीशंकर क्या पागल थे? कहानियों के द्वारा 'भाषा पर काबू', 'वार्ता-कथन', 'रुचि का विकास', 'स्मृति-विकास', 'अभिनय' आदि की शिक्षा देने वाले लक्ष्मीशंकर पागल कैसे हो सकते हैं?

कितनों को पता है कि विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार *लिओ टॉल्स्टाय का ककहरा* और *काउंट टॉल्स्टाय का नया ककहरा* जैसी किताबें लिखी थीं, जिनमें छोटी-छोटी कहानियों के ज़रिए बड़ी-बड़ी बातें सिखाने की क्षमता थीं। समुंद्र से पानी कहाँ जाता है? हाथी मनुष्य का गुलाम कैसे बना? शेखी बघारना क्यों गलत है? पढ़-लिखकर अपनी मातृभाषा भूल जाना कितना गलत है? सोने वाला चीज़ों को कैसे खो देता है? इस तरह की अनेक गंभीर बातों को सिखाने के लिए टाल्स्टाय ने जो माध्यम चुना, वह कहानियों का ही माध्यम था।

रूस के ही शिक्षाविद् वसीली सुखोम्लीन्स्की मानते थे कि 'कथा-कहानियाँ, खेल, कल्पना– यह बाल चिंतन का, उदात्त भावनाओं और आकांक्षाओं का जीवनदायी स्रोत है।'

वसीली का तो यह भी मानना था कि 'कथा-कहानियों में भलाई और बुराई, सच्चाई और झूठ, ईमानदारी और बेईमानी के जो नैतिक विचार निहित होते हैं, उन्हें इंसान केवल तभी आत्मसात् करता है, जबकि ये कथा-कहानियाँ बचपन में पढ़ी गई हों।'

यानी कहानियाँ सुन-पढ़कर बच्चे जीवन के कई मूल्यों को अनायास सीखते चलते हैं। 'सदा सच बोलना चाहिए', 'दूसरों की मदद करनी चाहिए' आदि मूल्य रटाकर हम बच्चों को सही रास्ते पर नहीं ला सकते, लेकिन जब कोई बच्चा किसी कहानी में सुनता है कि किसी परेशान चींटी की सहायता उसके मित्रों ने किस तरह की, तो उसके मन में मदद करने का भाव खुद पैदा हो जाता है। इसी तरह बच्चा

अगर सुनता है कि दुष्ट कौए का अंत कैसे हुआ, तो वह खुद सीख जाता है कि दुष्टता बुरी चीज़ है। इस समय के प्रसिद्ध शिक्षाविद् कृष्ण कुमार की सुनें तो– 'बहुत गंभीर विपदाओं के कल्पनाशील और न्यायसंगत हल इन कहानियों की संरचना में गुंथे होते हैं। मनुष्य की सामाजिकता और प्रकृति की चुनौती इन कहानियों की अंतर्धारा होती है।'

यह ठीक है कि समय बदल गया है और आज के बच्चे कंप्यूटर, मोबाईल, हवाई जहाज के युग में जी रहे हैं। इस लिहाज़ से उन्हें नई से नई बातें बताई जानी चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं होना चाहिए कि हम बच्चों को बैलगाड़ी, चापाकल या पोस्टकार्ड के बारे में बताएँ ही नहीं? मॉल या मल्टीपलेक्स के ज़माने में हाट, मेले और मैदान में दिखाए जाने वाले सिनेमा के बारे में न बताएँ? उसी तरह क्विज़, सुडोकू और एस.एम.एस. के ज़माने में कविताओं और कहानियों की बातें न करें? कृष्ण कुमार के शब्दों में सच तो यह है कि 'परिवार और समाज की नई परिस्थितियों में बच्चों को कहानी सुनाने की उतनी ही ज़रूरत है जितनी पहले थी। बल्कि आज कहानियों की कुछ अधिक ही आवश्यकता है। रंग-बिरंगी कहानियों की किताबें बच्चों को थोड़ी देर के लिए टी.वी. से अलग करके कहानियों की दुनिया में तो ले ही जा सकती हैं।

कुछ विज्ञान संपादक जो कृपा पूर्वक एकाध बाल कहानी किसी कोने में छाप देते हैं, नए तरह की कहानियों की मांग करते हैं, यानि ऐसी कहानियाँ जिनसे बच्चों को कंप्यूटर, मोबाईल, ई-मेल, इंटरनेट आदि कि शिक्षा दी जा सके। 'राजा-रानी' वाली कहानियों से उन्हें सख्त परहेज़ होता है। उन्हें क्या रूसी शिक्षाविद् और बाल साहित्यकार कोर्नेइ चुकोव्स्की के बारे में पता है, जो परीकथाओं और लोककथाओं के कट्टर समर्थक थे? जिन्होंने कोर्नेइ का नाम भी नहीं सुना है, वे अपने घर में ही एक प्रयोग करके देख लें। अपने बच्चे को कोई परीकथा या लोककथा सुनाएँ, फिर कोई आधुनिक कहानी और बच्चे से पूछें की उन्हें कौन-सी कहानी अच्छी लगी? यही नहीं, इस तरह का एक सर्वे ही कर लें तो सच्चाई का पता चल जाएगा।

वैसे दोष चंद संपादकों या उप-संपादकों का ही नहीं है। हमारा समाज जिस रफ्तार से आगे बढ़ रहा है, उस रफ्तार में बच्चों को सिखाने और हर जगह अव्वल बनाने की होड़-सी चल पड़ी है। यही वज़ह है कि बच्चों को गणित में पारंगत बनाने के लिए उन्हें 'एबैकस' की कक्षाओं में भेजा जा रहा है। कहानियों या कविताओं के द्वारा कुछ सिखाने का न तो माता-पिता के पास समय है, न धैर्य। फिर अखबार वालों के पास धैर्य कहाँ से आएगा? वहाँ तो और भी तेज़ी से धरती घूम रही है।

समय वैसे अभी भी है। अभिनेता-अभिनेत्रियों की रंग-बिरंगी तस्वीरों, उनके रोज़-रोज़ बदलते प्रेमी-प्रेमिका और आने-जाने वाली फिल्मों से अटे रहने वाले अखबारों में थोड़ा 'स्पेस' निकाला जा सकता है और बच्चों के लिए नई-पुरानी हर तरह कि कहानियों और कविताओं को छापा जा सकता है। अपने लिए 'स्पेस' देखकर तब बच्चे भी अखबारों से जुड़ सकते हैं।

❑❑❑